एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 06, अंक: 03 (मई-जून, 2026)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

भारत में प्राकृतिक खेती का व्यापक विश्लेषणर: कृषि-पारिस्थितिकी, उत्तर भारतीय परिप्रेक्ष्य और डिजिटल विस्तार

*सुमेश शर्मा[1], प्रतिमा राणा[2], मनमीत कौर[3], महाजन उमेश विशाल[4] एवं अंकित कुमार[5]

[1]शोधार्थी, कृषि विस्तार शिक्षा एवं संचार विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान, भारत

[2]सहायक प्राध्यापक, विस्तार शिक्षा निदेशालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, सोलन हिमाचल प्रदेश, भारत

[3]सहायक प्राध्यापक, कृषि विस्तार शिक्षा एवं संचार विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान, भारत

[4]शोधार्थी, कीट विज्ञान विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राज., भारत

[5]शोधार्थी, अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र विभाग, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, पंजाब

*संवादी लेखक का ईमेल पता: sumesh.07sharma@gmail.com

भारत की कृषि अर्थव्यवस्था वर्तमान में एक ऐसे ऐतिहासिक और संरचनात्मक परिवर्तन के चौराहे पर खड़ी है, जहाँ उत्पादन के पारंपरिक साधनों और पारिस्थितिक स्थिरता के बीच संतुलन बनाना अनिवार्य हो गया है। 1960 के दशक में आई श्हरित क्रांतिश ने उच्च उपज देने वाली किस्मों, सघन सिंचाई और रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से भारत को खाद्यान्न की कमी वाले देश से खाद्यान्न सरप्लस राष्ट्र में परिवर्तित कर दिया। हालांकि, इस इनपुट–इंटेंसिव मॉडल की दीर्घकालिक कीमत अब मृदा क्षरण, जैव विविधता की हानि और गिरते भूजल स्तर के रूप में चुकानी पड़ रही है।

विशेष रूप से उत्तर भारत के राज्यों. जैसे पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हरित क्रांति के दुष्प्रभावों का सबसे सघन प्रभाव देखा गया है। वर्तमान वैज्ञानिक शोध और डेटा यह संकेत देते हैं कि इन क्षेत्रों में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अपने सेचुरेशन पॉइंट पर पहुँच चुका है। इसका अर्थ यह है कि उर्वरकों की मात्रा बढ़ाने के बावजूद उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि नहीं हो रही है, जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत में निरंतर वृद्धि हो रही है और किसानों का शुद्ध लाभांश निरंतर घट रहा है। यह स्थिति न केवल आर्थिक रूप से बोझिल है, बल्कि मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए भी एक गंभीर संकट है।

पद्म श्री सुभाष पालेकर (वर्ष 1998) के अनुसार, प्राकृतिक खेती एक ऐसी सूक्ष्मजीव–आधारित और शून्य–बजट कृषि प्रणाली है जिसमें बाहरी रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का पूर्ण परित्याग करते हुए, केवल स्थानीय संसाधनों. जैसे कि देसी गाय के गोबर और गोमूत्र से निर्मित जीवामृत एवं बीजामृत के माध्यम से मृदा की सूक्ष्मजैविक सक्रियता को पुनर्जीवित किया जाता है, ताकि पौधों को प्रकृति के नियमों के अनुरूप समस्त आवश्यक पोषक तत्व स्वतः प्राप्त हो सकें और किसान को उत्पादन की लागत से पूर्णतः मुक्त कर आत्मनिर्भर बनाया जा सके।

इस बहुआयामी संकट के समाधान के रूप में प्राकृतिक खेती एक संगठित और विज्ञान–सम्मत विकल्प के रूप में उभरती है। यह पद्धति बायोमिविक्री के सिद्धांत पर कार्य करती है, जो कृषि को एक कारखाने के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में देखती है। इसमें बाहरी रसायनों (यूरिया, डीएपी, कीटनाशक) के स्थान पर खेत पर ही उपलब्ध जैविक संसाधनों. जैसे देसी गाय के गोबर, गोमूत्र, वनस्पति अवशेष और दालों के आटेकृका उपयोग किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य मृदा के भीतर सूक्ष्मजैविक गतिविधियों को पुनर्जीवित करना है, जो पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने का प्राकृतिक कार्य करती हैं। नीतिगत स्तर पर, भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन की स्वीकृति कृषि नीति में एक बड़े पैराडाइम शिफ्ट का संकेत है। इस मिशन का उद्देश्य केवल रसायनों को हटाना नहीं है, बल्कि ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देना, कृषि में महिलाओं की भूमिका को सुदृढ़ करना और भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीला बनाना है। यह शोध पत्र विशेष रूप से उत्तर भारत के भौगोलिक और सामाजिक–आर्थिक परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक खेती के कार्यान्वयन का विश्लेषण करता है। यहाँ की धान–गेहूं मोनोकल्चर प्रणाली में प्राकृतिक खेती को अपनाना तकनीकी और विस्तार की दृष्टि से अधिक चुनौतीपूर्ण है। इस प्रक्रिया में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी और डिजिटल विस्तार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, जो ज्ञान–गहन प्राकृतिक खेती को सरल, मापने योग्य और विश्वसनीय बनाने में सहायता करती है। यह अध्ययन पारिस्थितिक बहाली और आर्थिक समृद्धि के बीच एक सेतु स्थापित करने का प्रयास है।

उत्तर भारत की विशिष्ट भूमिका

उत्तर भारत जिसमें पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड सम्मिलित हैं। राष्ट्रीय खाद्य उत्पादन में निर्णायक भूमिका निभाता है। इस क्षेत्र की कृषि संरचना, संसाधन उपलब्धता और अवसंरचना इसे प्राकृतिक खेती के विस्तार के लिए रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाती है।

❖ **प्रमुख आयाम**

- **संसाधन संपन्नता–** इस क्षेत्र में सिंचित क्षेत्रफल अधिक है तथा कृषि अवसंरचना विकसित है। इससे क्लस्टर आधारित प्राकृतिक खेती मॉडल लागू करना तुलनात्मक रूप से सरल हो सकता है।
- **गंगा कॉरिडोर पहल–** उत्तर प्रदेश में गंगा नदी के किनारे 5 किलोमीटर क्षेत्र में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसका उद्देश्य रासायनिक अपवाह को कम करना तथा जल संरक्षण सुनिश्चित करना है।
- **पर्वतीय राज्यों का नेतृत्व–** हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड प्राकृतिक राज्य बनने की दिशा में अग्रसर हैं। बागवानी क्षेत्रों में जीवामृत और बीजामृत के प्रयोग से उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है।
- **पंजाब और हरियाणा की चुनौतियाँ –** धान–गेहूँ चक्र पर अत्यधिक निर्भरता प्राकृतिक खेती के विस्तार में बाधा है। हालाँकि, प्रगतिशील किसान मल्चिंग और फसल विविधीकरण के माध्यम से पराली जलाने की समस्या का समाधान खोज रहे हैं।

तकनीकी आधार –चार स्तंभ और डिजिटल एकीकरण

प्राकृतिक खेती के चार पारंपरिक स्तंभ–जीवामृत, बीजामृत, आच्छादन और वाफसा– अब आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी के साथ एकीकृत किए जा रहे हैं।

प्राकृतिक खेती के मूलभूत सिद्धांतों को अब आधुनिक डिजिटल विस्तार के साथ एकीकृत किया जा रहा है, जिससे इसकी वैज्ञानिक सटीकता और बढ़ गई है। इस प्रक्रिया में सबसे पहला स्तंभ जीवामृत है, जिसका मुख्य वैज्ञानिक कार्य मृदा के भीतर सूक्ष्मजीवों की सक्रियता और संवर्धन करना है। डिजिटल स्तर पर अब किसान मोबाइल–आधारित किण्वन समय प्रबंधन टूल्स का उपयोग कर रहे हैं, जो किण्वन की प्रक्रिया को सटीक समय पर पूरा करने और उसकी गुणवत्ता सुनिश्चित करने में मदद करते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण स्तंभ बीजामृत है, जो बीजों के प्राकृतिक शोधन और उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने का कार्य करता है। डिजिटल विस्तार के तहत अब ब्लॉकचेन–आधारित बीज ट्रेसबिलिटी का प्रयोग किया जा रहा है, जिससे बीजों की शुद्धता और उनके स्रोत की प्रामाणिकता डिजिटल रूप से सुरक्षित रहती है।

इसी क्रम में, तीसरा स्तंभ आच्छादन है, जो वैज्ञानिक रूप से मिट्टी की नमी को संरक्षित करने और खरपतवारों के प्राकृतिक नियंत्रण में सहायक होता है। आधुनिक कृषि में अब इसके साथ सेंसर–आधारित मृदा नमी निगरानी को जोड़ा गया है, जो किसानों को वास्तविक समय में यह जानकारी देते हैं कि खेत को कब और कितने पानी की आवश्यकता है। अंत में, वाफसा का सिद्धांत मृदा में जल और वायु के बीच उचित संतुलन बनाए रखने पर केंद्रित है। इसे और अधिक प्रभावी बनाने के लिए अब उपग्रह डेटा का उपयोग किया जाता है, जिसके माध्यम से व्यापक स्तर पर जल दक्षता विश्लेषण किया जाता है। यह डिजिटल एकीकरण न केवल पारंपरिक ज्ञान को प्रमाणित करता है, बल्कि उत्तर भारत जैसे सघन कृषि क्षेत्रों में प्राकृतिक खेती को अधिक पारदर्शी और परिणामोन्मुखी भी बनाता है।

तुलनात्मक डेटा विश्लेषण–उत्तर भारत बनाम शेष भारत

प्राकृतिक खेती को अपनाने की गति और उसके प्रभाव भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में असमान हैं। आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि उत्तर भारत (विशेषकर पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश) और शेष भारत (आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात) के बीच एक स्पष्ट पारिस्थितिक और आर्थिक अंतर मौजूद है।

- **प्रमाणित क्षेत्रफल और क्षेत्रीय आधार–** आंकड़ों के अनुसार, शेष भारत में लगभग 12.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र प्राकृतिक खेती के अंतर्गत प्रमाणित है, जबकि उत्तर भारत में यह केवल 2.5 लाख हेक्टेयर है। इसका मुख्य कारण यह है कि दक्षिण और पश्चिम भारत में आंध्र प्रदेश सामुदायिक प्रबंधित प्राकृतिक खेती जैसे मॉडलों ने एक दशक पहले ही मजबूत आधार तैयार कर लिया था। उत्तर भारत में बड़े पैमाने पर रासायनिक खेती के प्रभुत्व के कारण यह संक्रमण अभी प्रारंभिक अवस्था में है।
- **लागत संरचना और श्रम की गतिशीलता–** लागत के मोर्चे पर एक बड़ा अंतर दिखाई देता है। उत्तर भारत में प्रति एकड़ इनपुट लागत 2500–3500 है। जो शेष भारत (1200–2000) की तुलना में काफी अधिक है। शोध के अनुसार, उत्तर भारत में

कृषि मजदूरों की कमी और मशीनीकरण पर अत्यधिक निर्भरता के कारण श्रम लागत अधिक है। प्राकृतिक खेती में खरपतवार प्रबंधन और जीवामृत छिड़काव के लिए अधिक मानवीय श्रम की आवश्यकता होती है, जो उत्तर भारत में आर्थिक चुनौती पेश करती है।

- **मृदा स्वास्थ्यरू जैविक कार्बन की स्थिति–** मृदा स्वास्थ्य के सबसे महत्वपूर्ण संकेतक के मामले में उत्तर भारत 0.4–0.6 प्रतिशत के स्तर पर है, जबकि शेष भारत 0.6 –0.9 प्रतिशत पर पहुंच चुका है। दशकों तक हरित क्रांति के तहत रसायनों के भारी उपयोग ने उत्तर भारत की मिट्टी को जैविक रूप से श्थकाश दिया है। प्राकृतिक खेती के माध्यम से इस स्तर को सुधारने में यहाँ अधिक समय और सूक्ष्मजीव संवर्धन की आवश्यकता है।
- **फसल विविधीकरण बनाम मोनोकल्चर–** फसल प्रणालियों में भी स्पष्ट अंतर है। उत्तर भारत अभी भी गेहूं और धान के चक्र में फंसा हुआ है, जहाँ प्राकृतिक खेती को लागू करना तकनीकी रूप से चुनौतीपूर्ण है। इसके विपरीत, शेष भारत में कपास, दलहन और फलों जैसी विविधीकृत फसलें उगाई जा रही हैं, जो प्राकृतिक खेती के सिद्धांतों (जैसे अंतर–फसल) के साथ अधिक सहजता से मेल खाती हैं।

उत्तर भारत में प्राकृतिक खेती की सफलता के लिए क्षेत्र–विशिष्ट मॉडल की आवश्यकता है। उत्तर भारत में उच्च लागत की भरपाई के लिए मशीनीकरण और डिजिटल विस्तार (जैसे ड्रोन और सेंसर) का उपयोग अनिवार्य है, जबकि शेष भारत में सामुदायिक प्रबंधन और परंपरागत ज्ञान पहले ही सफल सिद्ध हो चुका है।

उत्तर भारत की विशिष्ट चुनौतियाँ

(1) संक्रमण अवधि प्रभाव– पंजाब और हरियाणा में प्रारंभिक 2 वर्षों में 8–12 प्रतिशत उपज गिरावट दर्ज की गई, जबकि आंध्र प्रदेश में यह 3–5 प्रतिशत तक सीमित रही।

(2) पराली प्रबंधन– 2025 तक प्राकृतिक खेती अपनाने वाले 60 प्रतिशत किसानों ने पराली जलाना बंद किया।

(3) पर्वतीय राज्यों की उपलब्धि– हिमाचल और उत्तराखंड ने अपने बागवानी क्षेत्र का 45 प्रतिशत प्राकृतिक खेती के अंतर्गत लाया।

राजस्थान में प्राकृतिक खेती– मरुधरा में कृषि–पारिस्थितिक क्रांति

राजस्थान, अपनी विषम भौगोलिक परिस्थितियों और जल की कमी के कारण, प्राकृतिक खेती के लिए एक अत्यंत उपयुक्त और महत्वपूर्ण राज्य बनकर उभरा है। वर्तमान डेटा (2025–26) के अनुसार, राज्य सरकार ने विकसित राजस्थान /2047 के विजन के तहत 2.50 लाख किसानों को इस पद्धति से जोड़ने का व्यापक लक्ष्य रखा है। वर्तमान में राज्य के विभिन्न जिलों में लगभग 1 लाख हेक्टेयर भूमि को प्राकृतिक खेती के अंतर्गत लाया जा चुका है, जिसे 2000 विशेष क्लस्टरों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक क्लस्टर में 50 हेक्टेयर क्षेत्र और 125 किसानों का समूह शामिल है, जिन्हें तकनीकी मार्गदर्शन और वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है।

वित्तीय प्रोत्साहन के रूप में, चयनित किसानों को 4,000 रुपये प्रति एकड़ की सहायता राशि सीधे बैंक खातों में दी जा रही है। बुनियादी ढांचे को मजबूत करने के लिए राज्य में अब तक 180 बायो–इनपुट संसाधन केंद्र स्थापित किए जा चुके हैं, जहाँ किसान स्थानीय स्तर पर जीवामृत और बीजामृत तैयार करने का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। राजस्थान के लिए यह पद्धति विशेष रूप से वरदान सिद्ध हो रही है क्योंकि यह आच्छादन (डनसबीपदह) के माध्यम से मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाती है, जो शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई की आवश्यकता को काफी कम कर देती है।

विपणन की दृष्टि से, राज–किसान पोर्टल और डिजिटल विस्तार सेवाओं के माध्यम से उत्पादों के प्रमाणीकरण और प्रीमियम मार्केटिंग पर जोर दिया जा रहा है। मेवाड़ से लेकर शेखावाटी तक, कृषि सखियाँ और मास्टर ट्रेनर इस ज्ञान–गहन पद्धति को अंतिम छोर तक पहुँचा रहे हैं। निष्कर्षतः, राजस्थान में प्राकृतिक खेती न केवल रसायनों से मुक्ति का मार्ग है, बल्कि यह मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करने और किसानों को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

आर्थिक तुलना और बाजार

प्राकृतिक खेती की सफलता का मूल्यांकन केवल लागत में कमी के आधार पर नहीं, बल्कि बाजार में मिलने वाले मूल्य और अतिरिक्त आय के स्रोतों के आधार पर किया जाना आवश्यक है। आय और विपणन संकेतकों का तुलनात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि उत्तर भारत, विशेषकर दिल्ली–एनसीआर जैसे विशाल शहरी केंद्रों की निकटता के कारण, प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने में अग्रणी है। जहाँ शेष भारत में प्राकृतिक उत्पादों पर पारंपरिक उत्पादों की तुलना में 10 से 20 प्रतिशत अधिक मूल्य मिल रहा है, वहीं उत्तर भारत के किसानों को उनकी भौगोलिक अवस्थिति और उच्च क्रय शक्ति वाले शहरी बाजारों के कारण 20 से 35 प्रतिशत तक का प्रीमियम मूल्य प्राप्त हो रहा है। यह अंतर प्रत्यक्ष विपणन और श्खेत से थाली तकश मॉडल की सफलता को रेखांकित करता है।
विपणन की इस प्रक्रिया को सशक्त बनाने में डिजिटल सक्रियता एक महत्वपूर्ण कारक बनकर उभरी है। उत्तर भारत के लगभग 70 प्रतिशत किसान उत्पादक संगठन अब डिजिटल प्लेटफॉर्म और ई–कॉमर्स के माध्यम से सीधे उपभोक्ताओं से जुड़े हैं, जबकि शेष भारत में यह सक्रियता 55 प्रतिशत के स्तर पर है। यह डिजिटल एकीकरण मध्यस्थों को कम करने और किसानों के शुद्ध लाभ को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

इसके अतिरिक्त, प्राकृतिक खेती के माध्यम से प्राप्त होने वाली गैर–पारंपरिक आय, जैसे कार्बन क्रेडिट एक उभरता हुआ क्षेत्र है। वर्तमान डेटा के अनुसार, मृदा में जैविक कार्बन के संचय से उत्तर भारत के किसानों को प्रति एकड़ ₹1800 से ₹2500 की अतिरिक्त आय होने की संभावना है। हालाँकि, यह शेष भारत के ₹1800 से ₹2500 के स्तर से थोड़ा कम है, जिसका मुख्य कारण उत्तर भारत की मिट्टी में रसायनों के दीर्घकालिक प्रभाव से उबरने की धीमी प्रक्रिया है। निष्कर्षतः, उत्तर भारत में डिजिटल विपणन और शहरी बाजारों की निकटता प्राकृतिक खेती को एक अत्यंत लाभकारी आर्थिक मॉडल में परिवर्तित कर रही है।

डिजिटल विस्तार–प्राकृतिक खेती का नया प्रतिमान

प्राकृतिक खेती की सफलता के लिए केवल पारंपरिक ज्ञान पर्याप्त नहीं हैय इसे आधुनिक वैज्ञानिक मापदंडों पर खरा उतरने के लिए तकनीकी समर्थन की आवश्यकता है। डिजिटल कृषि मिशन और । एग्री–स्टैक पहल ने भारतीय कृषि विस्तार सेवाओं को एक सूचना–केंद्रित मॉडल से बदलकर डेटा–संचालित मॉडल में परिवर्तित कर दिया है। वर्ष 2026 तक भारत में स्मार्टफोन उपयोगकर्ताओं की संख्या 1 बिलियन होने का अनुमान है, जो डिजिटल विस्तार को ग्रामीण भारत के अंतिम छोर तक पहुँचाने का सबसे सशक्त माध्यम बनाता है।

प्रमुख डिजिटल पहल और उनका प्रभाव–

- **डिजिटल किसान पहचान–** सरकार द्वारा अब तक लगभग 30 लाख डिजिटल किसान आईडी का सफलतापूर्वक सृजन किया जा चुका है। यह पहचान पत्र न केवल किसानों को सरकारी योजनाओं से जोड़ता है, बल्कि प्राकृतिक खेती के तहत किए जा रहे प्रमाणीकरण को पारदर्शी और व्यक्तिगत बनाता है।
- **डैशबोर्ड–** राष्ट्रीय प्राकृतिक खेती मिशन के अंतर्गत विकसित किया गया रीयल–टाइम डैशबोर्ड देश भर के 1500 क्लस्टरों की सूक्ष्म निगरानी कर रहा है। इसमें मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार, अपनाई गई प्रथाओं और लाभार्थी किसानों का संपूर्ण डेटाबेस उपलब्ध है।
- **कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित निर्णय समर्थन प्रणाली–** प्राकृतिक खेती ज्ञान–गहन है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित ऐप अब स्थानीय मृदा डेटा और मौसम के पूर्वानुमान के आधार पर किसानों को विशिष्ट परामर्श देते हैं, जैसे कि जीवामृत के छिड़काव का सटीक समय या विशेष कीटों के लिए प्राकृतिक निवारण।
- **नॉर्मलाइज्ड डिफरेंस वेजिटेशन इंडेक्स और उपग्रह–आधारित विश्लेषण–**नॉर्मलाइज्ड डिफरेंस वेजिटेशन इंडेक्स तकनीक का उपयोग करके उपग्रह चित्रों के माध्यम से मृदा में जैविक सुधार और फसल के स्वास्थ्य का विश्लेषण किया जा रहा है। इससे बिना खेत पर जाए मिट्टी में बढ़ रहे जैविक पदार्थ का अनुमान लगाया जा सकता है।
- **ब्लॉकचेन आधारित ट्रेसबिलिटी–** उपभोक्ता अब अपने भोजन के स्रोत के प्रति सजग हैं। ब्लॉकचेन तकनीक उत्पाद की शुद्धता और उसके केमिकल–फ्री होने का डिजिटल प्रमाण प्रस्तुत करती है, जिससे प्राकृतिक उत्पादों की विश्वसनीयता बढ़ती है।

डिजिटल विभाजन और चुनौतियाँ –

तकनीकी क्रांति के बावजूद, डिजिटल विस्तार के पूर्ण कार्यान्वयन में कुछ संरचनात्मक और व्यवहारगत बाधाएं मौजूद हैंरू

- **निम्न डिजिटल साक्षरता–** उत्तर भारत के बड़े किसानों में तकनीक की पहुँच अधिक है, लेकिन छोटे और सीमांत किसानों में अभी भी डिजिटल साक्षरता का अभाव है। वे अक्सर जटिल ऐप्स के स्थान पर पारंपरिक विधियों पर ही निर्भर रहते हैं।
- **डेटा गोपनीयता और सुरक्षा–**एग्री–स्टैक के माध्यम से किसानों का व्यक्तिगत और भूमि संबंधी डेटा एकत्रित किया जा रहा है, जिससे डेटा की गोपनीयता और सुरक्षा को लेकर गंभीर चिंताएँ पैदा हो रही हैं। इसके लिए एक मजबूत कानूनी ढांचे की आवश्यकता है।
- **यंत्रीकरण और तकनीकी समन्वय –** पंजाब और हरियाणा जैसे उच्च यंत्रीकरण वाले क्षेत्रों में डिजिटल टूल्स का पारंपरिक भारी मशीनों (जैसे कंबाइन हार्वेस्टर) के साथ समन्वय बिठाना एक चुनौती है। उदाहरण के लिए, पराली प्रबंधन में उपयोग होने वाले सेंसर्स का मशीनों के साथ श्स्मार्ट इंटीग्रेशनश अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है।

डिजिटल विस्तार केवल एक सहायक उपकरण नहीं, बल्कि प्राकृतिक खेती को व्यापक स्तर पर ले जाने का अनिवार्य साधन है।

आर्थिक विश्लेषण (3 वर्ष तुलना)–

प्राकृतिक खेती को अपनाने का निर्णय लेने में किसान के लिए सबसे बड़ा कारक आर्थिक प्रतिफल होता है। उपरोक्त डेटा का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि प्राकृतिक खेती एक धीमी लेकिन स्थिर आर्थिक सुधार की प्रक्रिया है।

प्रथम वर्ष (संक्रमण काल) प्रथम वर्ष में पारंपरिक खेती का शुद्ध लाभ ₹45000 है। जबकि प्राकृतिक खेती में यह ₹38000 दर्ज किया गया है। यह लगभग 15 प्रतिशत की गिरावट को दर्शाता है। इसका मुख्य कारण श्मृदा विषहरणश की प्रक्रिया है। जब मिट्टी रसायनों से मुक्त होती है, तो उसके सूक्ष्मजीवों को सक्रिय होने में समय लगता है, जिससे उपज में मामूली गिरावट आती है।

शोध की दृष्टि से, यह वर्ष किसानों के लिए सबसे चुनौतीपूर्ण होता है, जहाँ सरकारी सहायता और संक्रमणकालीन वित्त की सर्वाधिक आवश्यकता होती है।

द्वितीय वर्ष (स्थिरता का चरण) दूसरे वर्ष तक आते–आते, पारंपरिक खेती का लाभ गिरकर ₹43000 पर आ जाता है (बढ़ती उर्वरक लागत के कारण), जबकि प्राकृतिक खेती का लाभ बढ़कर ₹42000 हो जाता है। इस चरण में लागत–लाभ अनुपात संतुलित होने लगता है। मिट्टी की उर्वरता स्वाभाविक रूप से सुधरने लगती है और किसान का बाहरी रसायनों पर खर्च लगभग शून्य हो जाता है, जिससे शुद्ध लाभ में समानता आती है।

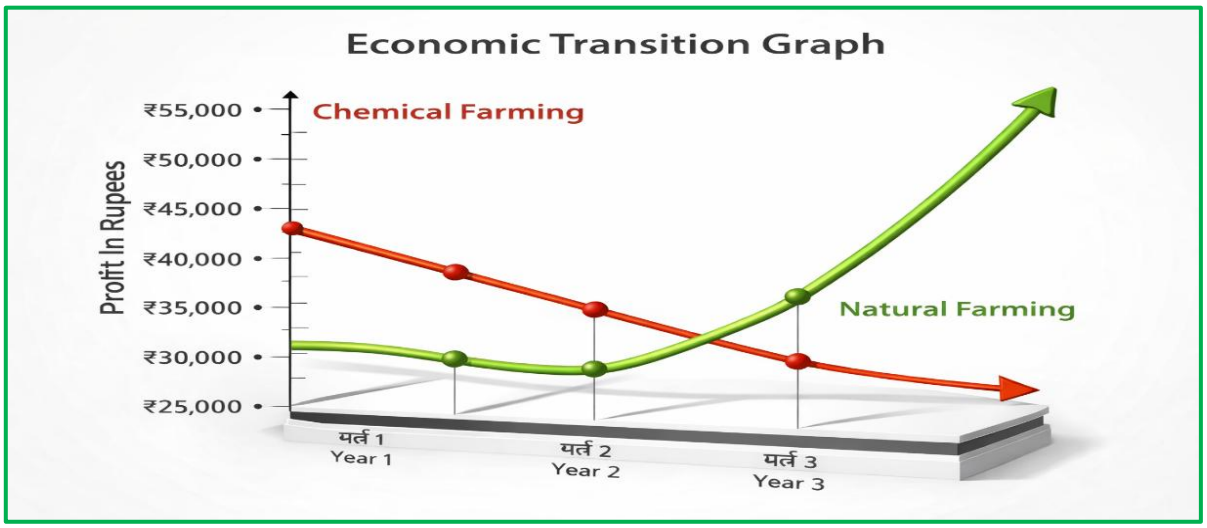

तृतीय वर्ष (उच्च लाभप्रदता और स्थिरता) तीसरे वर्ष में एक बड़ा पैराडाइम शिफ्ट देखा जाता है। जहाँ पारंपरिक खेती का लाभ रसायनों की बढ़ती मांग और मिट्टी की थकान के कारण घटकर ₹41000 रह जाता है। वहीं प्राकृतिक खेती का लाभ बढ़कर ₹52000 तक पहुँच जाता है। यह वृद्धि दो कारणों से होती हैरू पहला, लागत का न्यूनतम होना, और दूसरा, उत्पाद की प्रीमियम गुणवत्ता के कारण बाजार में मिलने वाला बेहतर मूल्य।

यह डेटा सिद्ध करता है कि प्राकृतिक खेती न केवल पारिस्थितिक रूप से स्थायी है, बल्कि तीसरे वर्ष के बाद यह रासायनिक खेती की तुलना में 25 प्रतिशत अधिक आर्थिक लाभ प्रदान करती है। उत्तर भारत के परिप्रेक्ष्य में, जहाँ रसायनों की लागत प्रतिवर्ष 15–15 प्रतिशत बढ़ रही है, यह मॉडल किसानों को ऋण के जाल से मुक्त करने का सबसे प्रभावी साधन है।

निष्कर्ष

भारत में प्राकृतिक खेती अब एक वैकल्पिक प्रयोग से बढ़कर राष्ट्रीय नीति का मुख्य स्तंभ बन चुकी है। हरित क्रांति के दुष्प्रभावों को दूर करने हेतु यह पारिस्थितिक तंत्र पर आधारित एकमात्र वैज्ञानिक उत्तर प्रस्तुत करती है। उत्तर भारत की श्धान–गेहूंश प्रणाली में इसे अपनाना मृदा स्वास्थ्य और भूजल संरक्षण के लिए अपरिहार्य है। डिजिटल विस्तार ने ज्ञान–गहन प्राकृतिक खेती को सरल और मापनीय बनाकर इसकी बाधाओं को कम किया है। आंकड़ों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि संक्रमण काल के बाद यह पद्धति रासायनिक खेती से 25 प्रतिशत अधिक लाभदायक सिद्ध होती है। रिमोट सेंसिंग और ब्लॉकचेन जैसी तकनीकें किसानों को कार्बन क्रेडिट जैसी नई आय प्रदान कर रही हैं। प्राकृतिक खेती केवल रसायनों का त्याग नहीं, बल्कि ग्रामीण उद्यमिता और जलवायु अनुकूल कृषि का भविष्य है। भारत की खाद्य संप्रभुता के लिए अब पोषण–आधारित गुणवत्ता को प्राथमिकता देना आवश्यक है, जो केवल इस पद्धति से ही संभव है। उत्तर भारत में कृषि–पारिस्थितिकी पर्यटन और भविष्य के डिजिटल कार्बन ट्रेडिंग तंत्र किसानों को पर्यावरण संरक्षण के लिए पुरस्कृत करेंगे। अंततः, यह एक सभ्यतागत सुधार है जो आधुनिक भारत को मिट्टी, जल और स्वास्थ्य के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी का बोध कराता है।